Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, Impact Factor: 5.647, Volume 10, No. 04, October, 2020, pp. 45-48

प्राचीनकाल में शिक्षा का स्वरूप एवं प्राचीन शिक्षण केन्द्र के शिक्षक

डॉ. अजय कृष्ण*

iLrkouk

प्राचीनकाल के समाज में शिक्षक का स्थान अत्यन्त आदरयुक्त एवं प्रतिष्ठित था। हमारे यहाँ गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और साक्षात् ब्रह्म तक महनीय बताया गया है। प्राचीन युग में गुरू बनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही मिला था, जो अन्य विद्याओं के साथ–साथ शस्त्र–विद्या, युद्ध–नीति तथा अर्थशास्त्र भी पढ़ाते थे, किन्तु यह छूट अवश्य थी कि यदि ब्राह्मण गुरू न मिलते तो क्षत्रिय गुरू से भी विद्या प्राप्त की जा सकती है और ब्रह्म विद्या तो किसी भी अधिकारी से प्राप्त की जा सकती थी।

आगे चलकर इन गुरूओं के दो भेद हो गये – पहला शिक्षा गुरू, दूसरा दीक्षा–गुरू कहलाता था। जो उपनयन के बाद छात्रों को अपने साथ रखकर आचार–विचार भी सिखाता था उसे दीक्षा – गुरू कहते थे। ये दीक्षा – गुरू अपने छात्रों को रहने का स्थान भी देते थे और उनके भोजन की व्यवस्था भी करते थे, यहाँ तक की यदि कोई छात्र किसी दूसरे आचार्य से कोई विद्या पढ़ना चाहता था तो उसे दूसरे गुरू के पा जा कर पढ़ने की सुविधा भी देते थे। जो विद्यान केवल विभिन्न शास्त्र मात्र पढ़ाते थे वह शिक्षा गुरू कहलाते थे। वे आचार्य अथवा गुरू के नाम से जाने जाते थे। आचार्य सूत्र में कहा गया है कि वह अपने शिष्यों का आचार या चरित्र की भी शिक्षा प्रदान करता था। मनु के अनुसार जो ब्राह्मण विद्वान शिष्य का यज्ञोपवित संस्कार कर यज्ञ विद्या तथा रहस्यों (उपनिषदों) के सहित वेदशास्त्र पढ़ाता था वही आचार्य था। व्यास के अनुसार आचार्य वह था जिसमें वेदों के प्रति उत्सर्ग की भावना थी, उच्च परिवार का था, श्रोत्रिय था, शुचि था, वैदिक शास्त्रों का अध्ययन किया तथा जो आलसी नही था।

शिक्षा देने वाले व्यक्ति को शिक्षक कहा जाता है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में इसके तीन स्तर मिलते हैं जिनमें सर्वोच्च आचार्य था तथा दूसरे स्तर पर उपाध्याय और तीसरे स्तर पर गुरू था।

आचार्य

आचार्य उसे कहते हैं जो शिष्य को उसके उपनयन के बाद शिक्षादि अंगों के साथ रहस्यों की व्याख्या के साथ समग्र वेद की विद्या प्रदान करता है। आचार्य धमार्थ शिक्षा देते थे। व्यवहारिक दृष्टि से अध्यापन के तीन प्रयोजन थे – धर्म, अर्थ और शुश्रुषा प्राप्ति। आचार्य शिष्यों में आचायर अर्थात चरित्र का निर्माण करते थे, शास्त्र के रहस्यों को खोलते थे और शिष्यों की बुद्धि को विकसित करते थे। शिष्यों का उपनयन संस्कार कर उन्हें कल्प और रहस्य के साथ वेद आदि की शिक्षा देते थे। आचार्य की यही कामना रहती थी उनका शिष्य विद्वान बन कर मनस्वी और यशस्वी हो तथा शिष्य परम्परा को सुदृढ़ करे।

* पूर्व शोधार्थी, समाज विज्ञान संकाय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार।

उपाध्याय

मनु के अनुसार जो ब्राह्मण वेद (मंत्र अथवा ब्राह्मण भाग) को तथा वेदांगो (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष और छन्दशास्त्र) को जीविका के लिय पढ़ाता था, वह उपाध्याय कहा जाता था। दस उपाध्यायों की अपेक्षा एक आचार्य श्रेष्ठ माना जाता था।

गुरू

जो गृहस्थ विद्वान शिक्षा प्रदान करता था वह गुरू के श्रेणी में आता था। पिता भी गुरू की श्रेणी में ग्राह्य थे। मनु का कहना है कि जो शास्त्रानुसार गर्भाधानादि संस्कारों को करता था और अन्नादि के द्वारा अपने परिवार का सम्बर्धन करता था वह ब्राह्मण गुरू कहा जाता था। ऐसे शिक्षक भी समाज में थे जो अपने परिवार का भरण–पोषण भी करते थे और शिष्यों को शिक्षा भी प्रदान भी प्रदान करते थे। मनु स्मृति द्वारा शिक्षक के यह तीन स्तर थे, इन तीन वर्गों के अतिरिक्त और भी वर्ग या शिक्षक के प्रकार होते थे। स्मृतियों में चार प्रकार के शिक्षक माने गये हैं कुलपति, आचार्य, उपाध्याय और गुरू। जो ब्रह्मषि विद्वान दस हजार मुनियों अर्थात् विद्या का मनन करने वाले ब्रह्मचारियों को अनन्–वस्त्र आदि देकर पढ़ाता था वह कुलपति कहलाता था। जो अपने छात्रों को कल्प अर्थात् यज्ञ करने की विधि और रहस्य अर्थात् उपनिषद के साथ वेद पढ़ाता था, वह आचार्य कहालाता था। जो विद्वान मंत्र और वेदांग पढ़ाता था वह उपाध्याय कहलाता था और जो विद्वान अपने छात्रों को भोजन दे कर वेद–वेदांग पढ़ाता था, वह गुरू कहलाता था। उस समय यही विश्वास था कि विद्या दान में बढ़कर कोई दान नही है क्योंकि विद्या पढ़ने से जीवन की मुक्ति हो जाती है। इसलिए अनेक विद्वान सभी प्रकार की तृष्णा को त्याग कर लोक कल्याण्पा की कामना से छात्रों को विद्या दान करते ही रहते थे। शिक्षकों के इन प्रकारों के अतिरिक्त कुछ और भी शिक्षकों के वर्ग थे, जो निम्न है :–

प्रवक्ता

प्रोक्ता (ब्राह्मण और श्रौतसूत्र का विद्वान), साहित्य की शिक्षा देने वाला प्रवक्ता कहा जाता था।

अध्यापक

वैज्ञानिक और लौकिक साहित्य का ज्ञान प्रदान करने वाला अध्यापक के नाम से विख्यात था।

क्षोत्रिय

यह अध्यापक था जो वेद के भाषाओं को कण्ठस्थ करके छात्रों को दीक्षा देता था।

ऋत्विक

जो ब्राह्मण वृत होकर (वरण – संकल्पपूर्वक पादपूजनदि करा कर) अन्याधान (आहवनीय आदि अग्नि को उत्पन्न करने का कर्म), पाकयज्ञ (अष्टकादि) और अग्निष्ठोम आदि यज्ञ कराता था। वह ऋत्विक था।

चरक

प्राचीन काल में ऐसे भी शिक्षक थे जिनका जीवन भ्रमणशील और ययावर का था। ये घूम–घूम कर शिक्षा प्रदान करते थे। इस प्रकार के शिक्षक चरक कहे जाते थे। शिक्षक, आचार्य, उपाध्याय और अध्यापक शब्दों की अपेक्षा लोक व्यवहार में पढ़ाने वाले व्यक्ति के लिए गुरू का प्रयोग अधिक प्रचलित रहा। गुरू शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है :–

'गरति सिंचति कर्णयोर्ज्ञानामृतम् इति गुरू'

इसका अर्थ हे जो शिष्य के कानों में ज्ञानरूपी अमृत का सिंचन करता है वह गुरू है। दूसरी व्याख्या है – 'गिरति अज्ञानान्धकारम् इति गुरू' अर्थात जो अपने सदुपदेशों के माध्यम से शिष्य के आानरूपी अंधकार को दूर करता है वह गुरू है। तीसरी व्याख्या है – 'गुणाति धर्मादिरहस्यमृ इति गुरूः' इसका अर्थ है जो शिष्य के प्रति ज्ञातव्य तथ्यों का उपदेश करता है, वह गुरू है।

इस तरह गुरू शब्द को अनेक तरह से परिभाषित किया गया किन्तु सभी परिभाषायें अंततः शिक्षक के महत्ता को स्वीकार करता है। शिष्य वर्ग में अपने गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और परमब्रह्म के समान मानने की यह सुक्ति बहुत ही प्रचलित है।

गुरूर्ब्रह्म गुरूर्विष्णुर्गुरूदेवों महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

महर्षि याज्ञवलक्य ने लिखा है

उपनीय गुरूः शिष्य महात्वाहतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापदेदेनं शौचाचारांश्र शिक्षयेत।।

अर्थात उपनयन की विधि सम्पन्न होने पर गुरू अपने शिष्य को 'भू भुवः स्वः इन व्याहृतियों का उच्चारण करा कर वेद पढ़ावे और दंतधावन एवं स्नान आदि के द्वारा शौच के नियमों को सिखावे तथा उसके हित के लिए आचार की भी शिक्षा दें।

शिक्षक व्यक्ति और समाज को शिक्षित ही नहीं करता था बल्कि बौद्धक और आध्यात्मिक ज्ञान से पारंगत भी कराता था। वह अज्ञान के अंधकार से छात्र को ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश में लाता था। वस्तुतः ज्ञानरूपी दीपक आवृत करता था। गुरू ज्ञान की किरणों विकीर्ण करता है। निश्चय ही गुरू अपनी शिक्षा से शिरू के अंतरस् में उदीप्त दीप को अनावृत करके ज्ञान की किरणें फैलाता है। यह उसका अद्वितीय योग होता है। इसलिए प्राचीन काल के गुरू की अपरा महिमा था। वह आदर का ही पात्र नही बल्कि पूज्य भी था। वह देता के रूप का था। इसलिए उसके लिए कहा गया था कि आचार्य देवता है। यह सही बात है कि अच्छे आचार्य के सम्पर्क से मनुष्य को अच्दे अर्थों में ज्ञान की प्राप्ति होती थी। आचार्य के व्यक्तित्व और उसके ज्ञान से भी आचार्य कुल का मान था। अतः शिक्षक (आचार्य) का परम विद्वान होना अपेक्षित था।

आचार्य का शिष्य के प्रति स्नेह

वैदिककालीन शिक्षक अपने शिष्य का भी आदर और सम्मान करता था। वह यह कामना करता था कि श्रेष्ठ बुद्धि वाले ब्रह्मचारी विभिन्न विषयों के अध्ययनार्थ, सभी जगह से उनके पास आयें तो संयमी, शीलवान और शांत स्वभाव के हो। आचार्य का शिष्य के प्रति स्नेहसिक्त सम्मान भी होता था। श्वेतकेतु के पुत्र उद्दालक ज्ञान प्राप्ति के लिए पांचाल परिषद के अध्यक्ष प्रवाहण जैवलि के पास गये। उसने स्वयं ससम्मान उन्हें आसन, उदक और अर्ध्य प्रदान किया और तत्पश्चात् अपना अेन्वासी बनाकर उसकी जिज्ञासाओं का समाधान किया।

अंतेवासी वर्ग में शिष्य अपने गुरूजन तथा कुलपति के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। प्रत्येक छात्र अपने गोत्र और नाम का उच्चारण करता हुआ अपने शिक्षक का अभिवादन करता था और दीर्घायुष्य तथा वैदुष्य का आशीर्वाद प्राप्त करता था।

उपनिषदों से ऐसे कतिपय उदाहरण मिलते हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि आचार्य अपने शिष्यों का बहुत सम्मान करता था। शिष्य को साधना के समय गुरू का स्मरण करना चाहिए। गुरू के सम्मुख मिथ्या भाषण करने पर गोवध और ब्रह्मवध का पाप होता है। गुरू और शिष्य को एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए तथा गुरू के आगे–आगे नही चलना चाहिए। गुरू के समीप रहने पर उनकी आज्ञा के बिना उनकी वन्दना किये बिना निद्रा, ज्ञान का परिचय–प्रदान, भोजन नहीं करना चाहिए। जो वस्तु बहुमूल्य हो उसे गुरू को प्रदान करना चाहिए। गुरू वंश भी शिरू के पूजा के योग्य है। शिष्य गुरू की निन्दा न करे और न गुरू की निन्दा सुने। एक बार उद्दालक प्राचीन काल में अनेक विद्वानों के साथ कैकेय नरेश अश्वपति के यहाँ गये। कैकेय नरेश अश्वपति के यहाँ गये कैकेय नरेश ने उनका अलग–अलग स्नेहपूर्वक सम्मान किया और इसके बाद उपदेश दिया। इसी तरह एक दूसरा प्रसंग भी मिलता है। जब आचार्य यमराज के यहाँ अपने पिता नचिकेता द्वारा आध्यात्म ज्ञान के लिए भेज गये। यमराज के न रहने पर नचिकेता ने तीन दिनों तक उनकी प्रतीक्षा की। यमराज जब लौटे तब उन्होंने नचिकेता का स्वागत सम्मान किया और आध्यात्मक का ज्ञान कराया।

विद्यार्थी का यह प्रसास होता था कि वह अपने आचार्य को गुरू दक्षिणा प्रदान करने घर की ओर प्रस्तान करे। अपने गुरू से शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त कृष्ण और बलराम ने उन्हें गुरू दक्षिणा प्रदान की थी। केशिध्वज ने अपने गुरू श्वानिक्य को गुरू दक्षिणा अर्पित की थी। ब्राह्मण आचार्यों को कभी–कभी दान भी मिल जाया करता था। शास्त्रों में वर्णित है कि विभिन्न तिथियों का आचार्यों को दान भी मिल जाया करता था। भीष्म ने जब कौरवों और पाण्डों को शिक्षा प्रदान करने के लिए द्रोणाचार्य को नियत किया तब उन्हें धन–धान्य से पूर्ण कर एक आवास भी प्रदान किया था। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य को मासिक आय नहीं मिलती थी। गुरू की भरण–पोषण की जिम्मेदारी शासन की थी, पर वह छात्रों से कोर्ठ उपहार नहीं ले सकता था चाहे धनी हो या निर्धन। नागसेन की जातक कथा तथा मिलिन्द पिन्ह में मिलता है कि राजपूत पेशगी उपहार लेना चाहते थे, पर गुरूजन अस्वीकार कर देते थे। छात्र से कुछ भी `ना एकदम मना था। दीक्षा के बाद वह चाहे तो गुरू दक्षिणा दे सकता था।

राज्य की ओर से कभी–कभी निर्धन और तेज छात्रों को गुरूकुलों में आर्थिक सहायता प्रदान करके भेजा जाता था। जातकों से विदित होता है कि ऐसे अनेक छात्र अध्यानार्थ तक्षशिला भेजे गये थे। आचार्यों को दानादि भी प्राप्त हुआ करते थे। द्वादशी के दिन उपाध्याय को अंगूठी, कटक, सुवर्णसूत्र, सवस्त्रादि दान में मिलते थे। कभी–कभी एक ही व्यक्ति आचार्यत्व और पौरोहित्य का कार्य करता था। ऐसी स्थिति में उसे आचार्यत्व भी दक्षिणा के साथ–साथ पौराहित्य का दान भी प्राप्त हो जाता था। प्रहलाद् का जो शिक्षक था वह पुरोहित भी कहा जाता था। ऐसे आचार्य को कुछ अतिरिक्त प्राप्त भी हो जाया करती थी। मनु के अनुसार ब्रह्मचारी, भूमि, स्वर्ण, गौ, घोड़ा, छाता, जूता, आसन और वस्त्र आचार्य को प्रदान करता था। आचार्यों को इसी प्रकार दक्षिणा प्राप्त होती थी। धनी छात्रों से अधिक और निर्धन छात्रों से कम धन की प्राप्ति की संभावना होती थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- शतपथ ब्राह्मण, 4.2.4.1
- याज्ञवल्क्य संहिता, 1.212 (अपर्राक)
- महाभारत, उद्योगपर्व, 44.6
- रघुवंश, 3.31
- विष्णु पुराण, 3.10.12
- मनु स्मृति, 69.25–47

♦❐♦